ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-12* January- 2018
Innovation The Research Concept

राजस्थान में जैन धर्म का प्रचार–प्रसार एवं इतिहास लेखन : एक विश्लेषण

सारांश

प्राचीनकाल से ही राजस्थान के जनमानस पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। राजस्थान का सांस्कृतिक जीवन धार्मिक परिवेश में ही पल्लवित होता रहा, यहां का जनजीवन ऐसी धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं और आस्थाओं के बहुरंगी ताने–वाने से गुंथा हुआ है जो इस भू–भाग के अतीत, सांस्कृतिक इतिहास तथा वीर पूजा की भावनाओं में देखा जा सकता है। मध्यमिका नगरी, आबू, अजमेर आदि स्थानों से ईसा पूर्व से लेकर अब तक जैन धर्म के प्रचार–प्रसार एवं इतिहास लेखन के संकेत मिलते हैं। जैन धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए जिनदत्त सूरि, हरिभद्र सूरि (757–857) आदि जैन विद्वान यहां प्रसिद्ध व्यक्तित्व है।[1] मण्डोर, सिरोही तथा पिण्डवाडा से मिलने वाली पत्थर, कांसे तथा सर्वधातु की मूर्तियाँ दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान में जैन धर्म के प्रचार और प्रसार पर प्रकाश डालती हैं।[2]

मुख्य शब्द : चैत्य आन्दोलन, सौवीर प्रदेश, अर्वुद भूमि, हर्षपुर, मध्यमिका, भूमिदान, उपकेश गच्छ।

फूलसिंह सहारिया
एसोसियेट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

विमल कुमार कोली
शोधार्थी,
इतिहास एवं संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान

प्रस्तावना

राजस्थान में जैन धर्म का विकास

राजस्थान में जैन धर्म के उत्कर्ष का श्रेय जैन साधुओं की परम्परा को है जिसने जैन धर्म व समाज में सुधार के लिए विधि चैत्य आन्दोलन का संचालन किया।[3] भगवान महावीर के जीवन काल में ही राजस्थान के कुछ भागो में जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य में होता है। सिन्धु–सौवीर का शासक उदायन जैन मतावलम्बी था सामान्यतः सौवीर प्रदेश के अन्तर्गत जैसलमेर और कच्छ का कुछ हिस्सा भी माना जाता था।[4]

अध्ययन का उद्देश्य

राजस्थान की धरा रणबांकुरों की स्थली रही है। उन रणबांकुरों ने भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। शूरता के साथ यहां का धार्मिक जीवन भी उनका आभूषण रहा है। यहाँ पर अनेक धर्मों का मानने वाले लोग निवास करते रहे। इनमें एक जैन धर्म है जो फलता–फूलता रहा। इस धर्म को फलने–फूलने में गुर्जर प्रतिहारों, मौर्य, गुप्त, राजपूत काल मे गुर्जर प्रतिहार, सोलंकी, परमार शासकों द्वारा महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैन धर्म को सर्वकालिक बनाने में विभिन्न जैन साधुओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान में जैन धर्म के प्रचार के अध्ययन का उद्देश्य हैं।

अभिलेखीय प्रमाण

राजस्थान में जैन धर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी का बडली शिलालेख माना जाता है जिसमें वीर निर्माण संवत् के 84 वे वर्ष तथा माध्यमिका का उल्लेख है मध्यमिका की पहचान चित्तौड़ के निकट स्थित नगरी से की जाती है।[5] 1276 ई. के भीनमाल के एक अभिलेख से विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर पधारे थे।[6] आबूरोड़ से 8 कि.मी. पश्चिम में मुंगस्थल से प्राप्त 1369 ई. के शिलालेख से पता चलता है कि भगवान महावीर स्वयं अर्बुद भूमि पधारे थे।[7] पतंजलि के महाभाष्य में उल्लिखित मध्यमिका ही बडली लेख की माझमिका है।[8] मध्यमिका जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रहा है, जहां जैन श्रमण संघ की मध्यमिका शाखा की स्थापना सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रन्थ ने की थी।[9] जैन श्रमणों की मध्यमिका शाखा का स्थविरावलि में उल्लेख है कि प्रियग्रन्थ का समय ई. पू. तृतीय शताब्दी माना जाता है। इसी समय का यहा से एक अभिलेख भी मिला है जिसका अर्थ है– सर्वभूतो के निमित्त। यह अभिलेख जैन या बौद्ध अनुयायी द्वारा सम्पन्न पुण्य कर्म से सम्बद्ध माना जा सकता है।[10]

मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में जैन धर्म

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल से ही राजस्थान का क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का हिस्सा था। वैराठ अशोक के साम्राज्य का हिस्सा था, यहाँ से अशोक के अभिलेख भी मिले हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन अनुयायी था, जिसने जैन धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये कई प्रयत्न किये।[11] अशोक के पौत्र सम्प्रति ने जैन धर्म के प्रसार हेतु अथक प्रयत्न किये। जैन परम्परा में उसे राजस्थान, गुजरात और मालवा में अनेक मन्दिरों का निर्माता तथा मूर्ति प्रतिष्ठित करवाने का श्रेय दिया जाता है। सम्प्रति ने अपने आचार्य सुहस्ती के संरक्षण में जैन धर्म के प्रसार के लिये सभा भी बुलाई थी।[12] मौर्योत्तर काल में जैन धर्म का उत्थान शकों के शासनकाल में ज्ञातव्य है। प्रथम शताब्दी ई.पू. में जैन विद्वान कालकाचार्य ने अवन्ति और सम्भवतः पश्चिमी राजस्थान तक जैन धर्म का प्रचार प्रसार किया। जैन अनुश्रुति के अनुसार विक्रमादित्य ने जैन आचार्य सिद्धसेन दिवाकर के प्रभाव से जैन धर्म स्वीकार कर लिया।[13] जो मालव गणतन्त्र से समबद्ध था, जिसका शासन कालान्तर में अजमेर, जयपुर आदि प्रदेशों पर होने की पुष्टि सिक्कों और अभिलेखों से होती है।[14] इस समय अजमेर एवं पुष्कर के बीच हर्षपुर एक समृद्धशाली नगर था, जिसकी पहचान ''हर्षपुर'' से की जाती है। जैन परम्परा में हर्षपुर को जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र वर्णित किया है जहाँ 300 जैन मन्दिर थे।[15]

गुप्त एवं उत्तर गुप्त काल में जैन धर्म

केशोरायपाटन के उत्खनन में गुप्त युगीन जैन मूर्तियाँ तथा कल्प वृक्ष पट्ट निकला था जिससे इस काल में यहाँ निर्मित जैन मन्दिर का ज्ञान होता है।[16] बसंतगढ़ से ऋषभदेव की 2 मूर्तियाँ मिली हैं जिन पर 687 ई. का अभिलेख है।[17] 8–9 वीं शताब्दी के दौरान राजस्थान में जैन धर्म के प्रसार का श्रेय हरिभद्र सूरि को है जो आरम्भ में चित्तौड के शासक जितारी के पुरोहित थे जो बाद में जैन श्रमण हो गये थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'समराइच्यकहा' में जैन धर्म की स्थिति पर काफी प्रकाश डाला है।[18]

राजपूत काल में जैन धर्म–प्रतिहार एवं चौहान कालीन

इस काल में धार्मिक जीवन तीन मुख्य धाराओं से प्रभावित था वैदिक, पौराणिक और जैन। वैदिक धर्म के प्रधान अंग यज्ञ, बलि, श्राद्ध आदि थे, बलि का निषेध उस समय के जैन ग्रन्थों में मिलता है। शक्तिकुमार के 977 ई. के शिलालेखों में आहड़ के जैन मन्दिर तथा सूर्य मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है। विग्रहराज चतुर्थ के समय में जैन विहार के बनाये जाने का प्रमाण उपलब्ध है।[19] गुर्जर–प्रतिहारों के राज्यकाल में जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का उल्लेख आठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से प्राप्त होता है। वत्सराज के समय ओसियां में महावीर स्वामी के मन्दिर का निर्माण हुआ था।[20] 783 ई. में जैन आचार्य जिनसेन द्वारा लिखा गया, हरिवंश पुराण अपने ढंग का अच्छा ग्रन्थ है, जो इस समय की धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालता है।[21] उद्योतन सूरि से ज्ञात होता है कि उसने जालौर के ऋषभदेव के मन्दिर को 778 ई. में पूर्ण किया तथा जालौर अनेकों जैन मन्दिरों से सुसज्जित था। जालोर के समीप अगासवन भी अनेक जैन मन्दिरों से सजा हुआ था। ओसिया से प्राप्त 956 ई. के अभिलेख से भी जैन धर्म की उन्नति का पता चलता है।[22]

कक्कुक जोधपुर के समीप मण्डोर का प्रतिहार राजा था, वह संस्कृत का विद्वान था और जैनधर्म का संरक्षक था। घटियाला के 861 के अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि उसने जैन मन्दिर का निर्माण करवाया।[23] जैन आचार्यों के प्रभाव से चौहान राजाओं ने भी जैन धर्म को आश्रय दिया। जैनाचार्य धर्मघोष सूरि, जिनदत्त सूरि आदि चौहानों के समकालीन थे, जिनके प्रति अगाध श्रद्धा के कारण जैनों के मन्दिरों को बनवाने हेतु अनुमति एवं भूमिदान दिया। पृथ्वीराज प्रथम 1105 ई. में शासन कर रहा था।[24] उसने रणथम्भौर के जैन मन्दिरों पर कलश चढाएँ।[25] उनका पुत्र अजयराज शैव भक्त होते हुये भी जैन सम्प्रदायों के अनुयायियों का सम्मान करता था। उन्होंने नवस्थापित अजमेर नगर में जैन मन्दिरों के निर्माण हेतु जैनों को अनुमति दी तथा पार्श्वनाथ के मन्दिर में एक स्वर्ण कलश भेंट किया।[26] अर्णोराज की जिनदत्त सूरि के प्रति अगाध श्रद्धा थी जो 1133 ई. से पहले ही सिंहासनारूढ़ हो चुका था। जिनदत्त सुरि के दर्शन किये और उनके अनुयायियों को एक विशाल जैन मन्दिर के निर्माण हेतु भूमि दान दी थी।[27] अर्णोराज के बाद बीसलदेव विग्रहराज 1152 ई. में गद्दी पर बैठा जो धार्मिक मामलों में पूर्वजों के पदचिह्नों पर चला। जैन धर्मावलम्बियों के लिए उसने विहार बनवाये। धार्मिक आयोजनों में भाग लिया और धार्मिक आचार्य धर्मघोष सूरि के कहने पर एकादशी के दिन पशुओं के वद्य पर रोक लगा दी।[28]

इसके पश्चात् 1169 के बिजोलिया शिलालेख से विदित होता है कि पृथ्वीराज द्वितीय ने वहाँ के पार्श्वनाथ के दैनिक खर्च हेतु मोरकुरी ग्राम दान दिया था। सोमेश्वर ने स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से रेवा नदी के तट पर स्थित पार्श्वनाथ मन्दिर को रेवाना ग्राम की सम्पूर्ण आय दान की थी।[29] तोमरों के पश्चात् चौहानों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। सोमेश्वर चौहान जैन धर्म का संरक्षक था। जब वह अजमेर से दिल्ली आया तो समृद्व जैन देवपाल भी उसके साथ था। दोनों ने हस्तिनापुर की तीर्थ यात्रा की तथा देवपाल ने 1176 ई. में कायोत्सर्ग मूर्ति की स्थापना की।[30] 1179 ई. में पृथ्वीराज चौहान ने शासन करना शुरू किया जो धार्मिक वाद विवाद में रूचि रखता था। उसके राजकीय दरबार में 1182 में जिनपति सूरि और उपकेशगच्छ के चैत्यवासी पण्डित पदमप्रभु के मध्य विवाद हुआ जिसमें जिनपति सूरि विजयी हुआ।[31] 1132 ई. के नाडलाई अभिलेख से ज्ञात होता है कि महाराजा रायपाल भी जैन अनुयायी था राजा अपने पुत्रों एवं पत्नी के साथ जैन साधुओं हेतु प्रति तेलधानी से राजभाग में से दो पालिकाएं तेल दानस्वरूप दिये जाने की घोषणा की।[32] नाडलाई से प्राप्त 1138 के शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजपाल के काल में गुहिल ठाकुर राजदेव ने नेमिनाथ भगवान की पूजा हेतु नडुलाडगिक से आयात–निर्यात होने वाले भार की आय का बीसवाँ भाग दान दिया था।[33] यहीं से प्राप्त 1143 ई. के चौथे शिलालेख में उल्लेख है कि रावल राजदेव ने एक विशोपक मुद्रा में और 2 पालिका तेल धानी से इस मन्दिर को दान दिया।[34] चौहान शासक

समरसिंह के आदेश से भण्डारी यशोवीर ने कुमारपाल द्वारा निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनःरूद्धार 1185 ई. में जालौर में करवाया। चाहमान शासक चाचिगदेव के शासक काल में 1245 ई. में तेलिया ओसवाल नरपति ने भगवान महावीर के मन्दिर के भण्डार में 50 द्रम दिये थे।[35]

सोलंकी एवं परमार काल

मूलराज सोलंकी ने वनराज के वंशज अन्तिम चावड़ राजा से करीब 942 ई. में सत्ता हस्तगत कर ली। मूलराज का साम्राज्य सत्यपुरमण्डल तथा कच्छ, सौराष्ट्र तक फैला हुआ था। यह जैनधर्म का संरक्षक था, इसने मूलराज व सहिका नामक जैन मन्दिर निर्मित करवाया था।[36] द्वाश्रयकाव्य के अनुसार पाली देश के ब्राह्मणों को यज्ञ में पशुबलि के स्थान पर अन्न का उपयोग करना पडता था। मेरूतुंग के अनुसार सपादलक्ष के एक साधारण व्यापारी को एक मूषक को मारने के दण्ड स्वरूप अपनी समस्त सम्पत्ति यूका विहार बनवाने में खर्च करनी पडी थी।[37] कुमारपाल ने बडी संख्या में जैन मन्दिर बनवाये। 1134 ई. अभिलेख से पता चलता है कि उसने जालौर में एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था।[38]

परमार शासकों ने भी जैन धर्म की उन्नति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सिरोही के दियाणा ग्राम के जैन मन्दिर में 967 ई. के अभिलेख में उल्लेखित है कि कृष्णराज के राज्य में विशिष्ट कुल के वर्धमान द्वारा वीरनाथ की मूर्ति की स्थापना की गई। ऐतिहासिक दृष्टि से यह लेख कृष्णराज परमार का काल निश्चित करता है। झाडोली के महावीर जैन मन्दिर के 1197 के लेख से ज्ञात होता है कि परमार राजा धारा वर्ष की रानी श्रृंगार देवी ने मन्दिर हेतु भूमिदान दी थी।[39] चन्द्रावती के शासक अल्हणसिंह के शासन काल में पार्श्वनाथ मन्दिर को भेंट देने का विवरण 1243 ई. के अभिलेख से विदित होता है।[40] चन्द्रावती के राजा वीसलदेव और सारंगदेव के शासन काल में दत्ताणी के परमार ठाकुर द्वयश्री प्रताप और हेमदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर के व्यय हेतु 2 खेत 1288 ई. में दान दिये थे।[41] धारा का परमार शासक नरवर्मन जैन आचार्य जिनवल्लसुटि का सम्मान करता था। सूरी उनके दरबार में भी आये थे। सूरिजी के अनुरोध पर नरवर्मन ने चित्तौड के चुंगीगृह से वहां के खरतरगच्छ के दो मन्दिरों को 2 द्रम दैनिक दिये जाने का आदेश दिया।[42]

मारवाड़ के बीजापुर के निकट हठुंडी में दसवीं शताब्दी में राठोड़ों का शासन था। जैन अनुयायी वासुदेव आचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर हठुंडी में हरिवर्मन के पुत्र विदग्धराज ने ऋषभदेव का मन्दिर बनवाकर भूमिदान में दी थी।[43] हठुंडी के इस मन्दिर को हस्तिकुण्डी की गोष्ठी ने पुनः सुधरवाया था। कालान्तर में वासुदेव आचार्य के शिष्य शान्तिभद्र के हाथों 1053 ई. में प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी थी, जिसमें जैन श्रावकों ने भी सहयोग प्रदान किया था। इन राठौड़ शासकों ने स्वर्ण से तुलकर, स्वर्ण गरीबों में बांटने के भी सन्दर्भ मिलते हैं।[44]

वर्तमान भरतपुर सूरशेन राजवंश के अन्तर्गत आता था (छठीं से बारहवीं शताब्दी), इस काल में जैन धर्म के प्रसार एवं उन्नति के साक्ष्य मिले हैं क्योंकि सूरसेन जनपद की प्राचीन राजधानी मथुरा जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र था। भरतपुर में जैन धर्म के प्राचीन चिह्न दसवीं शताब्दी के मिलते हैं। मेवाड़ के राजा अल्हट ने समकालीन प्रधुम्नसूरि को सपादलक्ष एवं त्रिभुवन गिरी को दरवार में सम्मानित किया गया था।[45] प्रधुम्न सूरि के शिष्य अभयदेव सुरि ने घनेश्वर सूरि के जैन साधु होने की प्रेरणा दी थी। धनेश्वर सूरि कर्दमभूपति के नाम से प्रसिद्ध है। धनेश्वर सूरि ने राजगच्छ की स्थापना की तथा ये धारा के परमार शासक वाकपति मुंज के समकालीन माने जाते हैं।[46] मुन्ज की अन्तिम तिथि 997 ई. थी, इस कर्दमभूपति की पहचान 1155 ई. के अनंगपाल के थाकरदा (डूंगरपुर) अभिलेख में उल्लेखित राजा पृथ्वीपाल देव उर्फ भर्तृपट्ट से की जाती है। इस अभिलेख में पृथ्वीपाल देव के पुत्र त्रिभुवनपाल देव पोत्र विजयपाल एवं प्रपोत्र सूरपाल देव का भी उल्लेख है। ये सूरसेन शासक ही रहे होगे।[47]

दिगम्बर जैन कवि दुर्ग देव ने अपनी कृति ''रिष्टसमुच्चय'' की रचना 1032 ई. में राजा लक्ष्मी निवास के शासनकाल में कुम्भनगर के शान्तिनाम मन्दिर में पूर्ण की थी।[48] इस कुम्भनगर की पहचान भरतपुर के निकटवर्ती कामां से की जाती है, इसमें उल्लेखित राजा लक्ष्मीनिवास की पहचान 1012 के बयाना अभिलेख में वर्णित चित्र लेखा के पुत्र लक्ष्मणराज से की जाती है।[49] राजा विजयपाल के शासनकाल में श्वेताम्बर काम्यकगच्छ के विष्णुसूरि एवं महेश्वरसूरि के नामोल्लेख युक्त बयाना का 1043 ई. के शिलालेख के महेश्वर सूरि के निर्माण का विवरण है।[50] इसी विजयपाल को दुर्ग का पुर्ननिर्माण एंव विस्तार कर विजयमन्दिर गढ़ नाम देने का श्रेय दिया जाता है। काम्यकगच्छ की उत्पति भरतपुर जिले में कामां से हुई और वह इस क्षेत्र तक ही सीमित रहा। बयाना से प्राप्त इन जैन अभिलेखों में नगर का नाम "श्रीपंथ" दिया है जो बयाना का प्राचीन नाम था। बयाना तहसील के नरोली गॉव से भी 1136 ई. की लेखयुक्त जैन प्रतिमाएँ मिली हैं।[51] जिससे यह क्षेत्र जैनधर्म का जीवन्त केन्द्र प्रकट होता है। बयाना का अन्तिम सूरसेन शासक कुमारपाल था जो कि 1154 ई. में सिहांसन पर बैठा। कुमारपाल को जैन साधु जिनदत्त सूरि ने धार्मिक शिक्षा दी थी। यहाँ के शान्तिनाथ मन्दिर पर स्वर्णकलश एंव ध्वज जिनदत्त सूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाया और समारोह बड़े उत्साह से मनाया गया था।[52]

जिनदत्त सूरि के 2 शिष्यों जिनपालगणि एवं धर्मशीलगणि ने यशोभद्राचार्य के निकट अध्ययन किया था। अपने गुरु जिनदत्त सूरि की आज्ञा मिलने पर 1188 ई. में त्रिभुवन गिरी के संघ को लेकर इन्होंने तीर्थयात्रा की तथा अन्य संघों के साथ जिनदत्तसूरि से भेट की।[53] त्रिभुवन गिरी के दुर्ग में 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वादिदेवसूरि ने किसी प्रकार प्रकाण्ड विद्वान को वाद–विवाद में परास्त करने का गौरव अर्जित किया।[54] त्रिभुवन में उपकेशगच्छ से सम्बद्ध एक प्राचीन मन्दिर भी था। इस प्रकार राजस्थान प्राचीन काल से ही जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा जिसका सतत विकास आज भी देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

प्राचीन काल से ही राजस्थान के जन मानस पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा हैं जो हम भू–भाग के अतीत सांस्कृतिक इतिहास एवं वीर पूजा की भावनाओं में देखा जा सकता है। मण्डोर, सिरोही, पिंडवाडा के मिलने वाली पत्थर, कांसे तथा मिश्रित धातु की मूर्तियों के साथ बडली, बैराठ, मूंगस्थल, घटयाली बिजोलिया, नाडलाई, सिरोही, थाकरदा (डूगरपूर),बयाना आदि स्थलों से प्राप्त शिलालेख जैन धर्म के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। जैन धर्म के प्रचार प्रसार के महत्वपूर्ण प्रमाण राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों–जालौर, आबू, ओसियां, पारानगरी, (नौगजा–मूर्ति), तिजारा (अलवर) के साथ पश्चिमी राजस्थान के विभिन्न स्थलों पर जैन मंदिरों का निर्माण होता है। इस धर्म को फैलाने में जैन साधुओं, विद्वानों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। उपरोक्त सभी के प्रयासों एवं प्रमाणों के स्पष्ट होता है कि राजस्थान में जैन धर्म का प्रचार–प्रसार प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *जयसिंह नीरज–राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2013, पृ. 17, 29*
2. *गोपीनाथ शर्मा राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ. – 23*
3. *डॉ. नरेन्द्र भानावत, जैन संस्कृति एवं राजस्थान, सम्यक ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर 1974 पृ. 124*
4. *त्रिभुवनलाल शाह, ऐंशियन्ट इण्डिया, वॉल्यम–I, बड़ौदा 1939, पृ. 125*
5. *पी. सी. नाहर–जैन इन्सक्रप्सन नं. 402, भारतीय प्राचीन लिपि माला पृ. 2*
6. *प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल 1907*
7. *अबुर्दाचल प्रदक्षिणा, जैन लेख संग्रह भावनगर वि. स. 2005, अभिलेख संख्या– 48*
8. *द हिस्ट्री ऑफ राजपूताना, वॉल्यूम– I, पृ. 110*
9. *हरमन जेकोबी सेक्रेट बुक्स ऑफ द ईस्ट, वॉल्यूम–22, 1884 पृ. 293*
10. *जी.एच.ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, अजमेर वि. सं. 1985 पृ. 354–58*
11. *वी.ए. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऑक्सफोर्ड 1924 पृ. 154*
12. *टी.एल. शाह–ऐंशियन्ट इण्डिया, वॉल्यूम 2, बड़ौदा 1939 पृ. 292–93*
13. *जेस बर्गेस, इण्डियन एन्टिक्वरी, वॉल्यूम–2, बोम्बे डायरेक्टरी 1873 एवं द पट्टावली समुच्चय पृ. 46*
14. *गार्डनर केटलॉग ऑफ इण्डियन कोइन्स, PT 17 नं. 5 एवं वी. छावडा एपीग्राफिया इण्डिका, वॉल्यूम 27 1947 पृ. 266*
15. *टी.एल.शाह ऐंशियंट इण्डिया वॉल्यूम–3, बडौदा 1939 पृ. 140*
16. *डॉ. के.सी. जैन जैनिज्म इन राजस्थान, जैन संस्कृत स्मारक शोलापुर 1963 पृ. 16*
17. *अबुर्दाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संग्रह भावनगर वि.स. 2005, संख्या –365*
18. *समराइच्छ कहा भूमिका पृ. 56*
19. *राजस्थान थ्रू दॉ एजेज, राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज 1966 पृ. 414–26*
20. *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, ऐन्यल रिपोर्ट 1908–09 पृ. 108*
21. *जी.एच. ओझा राजपूताने का इतिहास पृ. 179–80, गोपीनाथ शर्मा राज. का इतिहास पृ.67 पुरी, द गुर्जर प्रतिहार पृ.39–42*
22. *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट 1908–09 पृ. 108*
23. *डॉ. के.सी.जैन, जैनिज्म इन राजस्थान, जैन संस्कृत स्मारक, शोलापुर पृ. 19*
24. *एनल्स रिपोर्ट राजपूताना म्युजियम अजमेर,1934 नं. 4*
25. *गांधीलाल, भगवानदास, द केटलॉग ऑफ मेनुस्क्रिप्ट्स इन द जैन भण्डारण एट पाटन जी.ओ.एस. 1937 पृ. 316*
26. *जनमन पत्रिका स्थानीय आगरा पृ. 4*
27. *खरतरगच्छबृद्धगुर्वावली पृ.16*
28. *द केटलॉग ऑफ मेनुस्क्रिप्ट्स इन द जैन मण्डारन एट पाटन 1937 पृ.–370*
29. *एपिग्राफिया इण्डिका, वॉल्यूम 24 (पत्रिका) पृ.84*
30. *ज्योति प्रसाद जैन – उत्तर प्रदेश और जैन धर्म, लखनऊ 1976 पृ. 13*
31. *खरतरगच्छबृद्धगुर्वावली पृ. 25–33*
32. *वी. छावडा एपिग्राफिया इण्डिका वॉल्यूम–II, पृ. 34–35*
33. *वही पृ. 37–41*
34 *वही पृ. 63–66*
35. *प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे वेस्टर्न सर्कल 1908–09 पृ. 55*
36. *प्रबन्ध चिन्तामणी पृ. 22*
37. *वही, पृ. 110*
38. *प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ अर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न सर्किल 1908–09 पृ. 55*
39. *अर्बुदाचंल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, भावनगर अजमेर वि. सं. 2005 संख्यक 311*
40. *एनल्स रिपोर्ट ऑफ द राजपुताना म्यूजियम अजमेर 1909–10, नं. 22*
41. *अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह भावनगर वि. स. 2005 सं. 55*
42. *खरतरगच्छबहदगुर्वावली पृ. 13*
43. *डॉ. के.सी. जैन – जैनिज्म इन राजस्थान जैन संस्कृत स्मारक शोलापुर 1963, पृ. 26–27*
44. *पी.सी. नाहर, जैन इन्सक्रिप्शन पी.टी.–1, कलकत्ता 1918 नं. 898*
45. *पीटरसन्स रिपोर्टस–3, 1883 बम्बई, पृ. 158–66*
46. *दुलीचन्द मोहनलाल, जैन सहित्य छन्द संक्षिप्त इतिहास, बम्बई 1933, पृ. 197–98*
47. *''एनल्स रिपोर्ट ऑफ द राजपूताना म्युजियम'' अजमेर 1915–16, पृ. 3*

48. दुर्गदेव–रिष्टसमुच्चय' सपा. ए.एस. गोपाणी सिन्धी जैन सीरीज 21 बम्बई 1945
49. एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द 22 पृ. 120
50. इण्डियन एन्टिक्वेरी पत्रिका वॉल्यूम 21 पृ. 57
51. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलॉजिकल सर्वे वेस्टर्न सर्किल 1920–21 पृ. – 116
52. खरतरगच्छबृहदगुर्वावली, पृ. 19
53. वही पृ. 34
54. भारतीय विद्या जिल्द 2 भाग–1 पृ. 62